॥ श्रीहरिः ॥

563

श्रीपुष्पदन्तविरचित

शिवमहिम्नःस्तोत्र

(सरल हिन्दी तथा पद्यानुवादसहित)

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीपुष्पदन्तविरचित

शिवमहिम्नःस्तोत्र

(सरल हिन्दी अनुवाद तथा पद्यानुवादसहित)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

भूमिका

प्रस्तुत स्तोत्रमें भूत-भावन-भूतेश भगवान् शंकरकी महिमाका वर्णन है। इसमें ३२ श्लोक श्रीविष्णुपरक भी हैं; किन्तु पुस्तकका कलेवर न बढ़े, इसलिये मात्र शिवपक्षको ही व्याख्यामें दिखलाया गया है।

पुस्तकके रचयिता पुष्पदन्ताचार्य गन्धर्वोंके राजा थे। वे परम शिवभक्त होनेसे प्रतिदिन नियमतः शिवार्चन करते थे। दैवी शक्तिसे सम्पन्न होनेके कारण वे अदृश्य होनेमें सक्षम थे। वे छिपकर प्रमोद राजाके उद्यानसे पूजाके लिये नित्य पुष्प ले जाया करते थे, वाटिकाके रक्षक इस कृत्यको समझ नहीं पाते थे, अचानक एक दिन विहारप्रिय राजा प्रमोदने वाटिकामें पहुँचकर मालियोंसे फूलकी कमीका कारण पूछा। रक्षकोंने कहा—'राजन्! हमलोग निरन्तर रखवाली करते रहते हैं, फिर भी पुष्प गायब हो जाते हैं।' राजाने विचार किया कि इसमें कोई दैवी शक्ति काम कर रही है। अतः जबतक उस दैवी शक्तिको कुण्ठित नहीं किया जायगा तबतक यह चोरी बंद नहीं होगी। ऐसा विचार कर राजाने पुष्पहरण होनेवाले मार्गपर बिल्वपत्र, पुष्प, जलादि शिव-निर्माल्य छोड़वा दिया।

दूसरे दिन गन्धर्वराज भूलसे शिव-निर्माल्यका उल्लंघन

कर पुष्प-चयन तो किया, पर अपराधवश दैवी शक्ति क्षीण हो जानेके कारण उड़ न सके। वे विचार करने लगे कि 'कहीं शिव-पूजनमें गड़बड़ी तो नहीं हुई।' इसी विचार-विमर्शमें जब उनकी दृष्टि नीचे गयी तो उन्होंने पैरोंके नीचे जमीनपर शिव-निर्माल्य पड़ा देखा और फिर समझ गये कि इसीके उल्लंघनसे मेरी दैवी शक्तिका ह्रास हुआ है। जिसके कारण मैं अदृश्य होकर उड़नेमें असमर्थ हो रहा हूँ। पुनः दैवी शक्तिकी प्राप्तिके लिये गन्धर्वराजने आशुतोष भगवान् शिवकी जो स्तुति की वही 'शिवमहिम्नःस्तोत्र' के नाम प्रसिद्ध हुआ।

गन्धर्वराज पुष्पदन्ताचार्य पुनः दैवी शक्ति-सम्पन्न हुए और पुष्प लेकर अदृश्यरूपसे वाटिकासे उड़ गये। अपने नियमित स्थानपर पहुँचकर भगवान् शंकरका भक्तिभावसे पूजन किये।

भगवान् शिवकी प्रसन्नता-हेतु यह स्तोत्र बड़ा ही उपयोगी है। खोयी हुई शक्तिको पुनः प्राप्त करानेवाला है। इसमें सन्देहके लिये कोई स्थान नहीं है। इस स्तोत्रके पाठसे पाठकोंको अपना कल्याण-साधन करना चाहिये।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीपुष्पदन्तविरचित

शिवमहिम्नःस्तोत्र

हिन्दी-अनुवादसहित

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः॥

(गन्धर्वराज पुष्पदन्त भगवान् शंकरकी स्तुतिके उपक्रममें कहते हैं—) 'हे पाप-हरण करनेवाले शंकरजी! आपकी महिमाके आर-पारके ज्ञानसे रहित सामान्य (अल्पज्ञानवान्) व्यक्तिके द्वारा की गयी आपकी स्तुति यदि आपके स्वरूप (माहात्म्य)-वर्णनके अनुरूप नहीं है तो (फिर) ब्रह्मादि देवोंकी वाणी भी आपकी स्तुतिके अनुरूप नहीं है (क्योंकि वह भी आपके गुणोंका

सर्वथा वर्णन नहीं कर सकते)। किंतु जब सभी लोग अपनी-अपनी बुद्धि (-की शक्ति)-के अनुसार स्तुति करते हुए उपालम्भके योग्य नहीं माने जाते हैं, तब मेरा भी स्तुति करनेका (यह)प्रयास अपवादरहित ही होना चाहिये' (यह प्रयास खण्डनीय नहीं है)॥ १॥

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि।
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः॥

'आपकी महिमा वाणी और मनकी पहुँचसे परे है। आपकी उस महिमाको वेद भी (आश्चर्य)-चकित (भयभीत) होकर (निषेध-मुखेन) नेति-नेति कहते हुए आशयरूपमें वर्णन करते हैं। फिर तो ऐसे अचिन्त्य महिमामय आप किसकी स्तुतिके विषय (वर्ण्य) हो सकते हैं?

अर्थात् किसीकी स्तुति तदर्थ समर्थ नहीं हो सकती; क्योंकि आपके गुण न जाने कितने प्रकारके हैं अर्थात् अनन्त हैं। फिर भी हे प्रभो! नवीन परम रमणीय आपके (सगुण-)रूपके विषयमें वर्णनके लिये किसका मन आसक्त नहीं होता और किसकी वाणी उसमें प्रवृत्त नहीं होती? अर्थात्—सबके मन-वचन सगुणरूपमें संलग्न हो जाते हैं—सभी अपनी वाणीको प्रेरितकर वर्णनमें लगा देते हैं'॥ २॥

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन् किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम्।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता॥

'हे भगवन्! मधुसे सिक्त-सी अत्यन्त मधुर एवं परम उत्तम अमृतरूप वेदवाणीकी रचना करनेवाले देवाधिदेव ब्रह्मदेवकी वाणी भी क्या

आपके गुणोंको प्रकाशित कर आपको चमत्कृत कर सकती है? (कदापि नहीं) फिर भी हे त्रिपुरारि! मेरी बुद्धि आपके गुणानुवादजनित पुण्यसे अपनी इस (मलिन वासनासे भरी अतएव अपवित्र) वाणीको पवित्र करनेके लिये (ही) आपके गुण-कथनके द्वारा (की जानेवाली) स्तुतिके विषयमें उद्यत है।' न कि अपने स्तुति-कौशलसे आपका अनुरंजन करूँगा—यह मेरा अभिप्राय है॥ ३॥

तवैश्वर्यं यत् तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
त्रयीवस्तुव्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु।
अभव्यानामस्मिन् वरद रमणीयामरमणीं
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः॥

'हे वर देनेवाले शिवजी! आप विश्वकी सृष्टि, पालन एवं संहार करते हैं—ऐसा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद-(वेदत्रयी) निष्कर्षरूपसे वर्णन

करते हैं। इसी प्रकार तीनों गुणोंसे विभिन्न त्रिमूर्तियों (ब्रह्मा-विष्णु-महेश)-में बँटा हुआ जो इस ब्रह्माण्डमें आपका वह प्रख्यात (रचनात्मक, पालनात्मक एवं संहारात्मक) ऐश्वर्य है, उसके विषयमें खण्डन करनेके लिये कुछ जड़बुद्धि अकल्याणभागी (मन्दों) अभागों (नास्तिकों)-को मनोहर लगनेवाला पर वास्तवमें अशोभनीय या हानिकारक व्यर्थका मिथ्याप्रलाप (बकवाद) उठाते हैं'॥ ४॥

किमीहः किं कायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः॥

'हे वरद भगवन्! वह विधाता त्रिभुवनका निर्माण करता है तो उसकी कैसी चेष्टा होती है? उसका स्वरूप क्या है? फिर उसके साधन क्या

हैं? आधार अर्थात् जगत्का उपादान कारण क्या है?—इस प्रकारका कुतर्क, सब तर्कोंसे परे अचिन्त्य ऐश्वर्यवाले आपके विषयमें निराधार एवं नगण्य (उपेक्षित) होता हुआ भी सांसारिक (साधारण) जनोंको भ्रममें डालनेके लिये कुछ मूर्खोंको वाचाल बना देता है'॥ ५॥

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति।
अनीशो वा कुर्याद् भुवनजनने कः परिकरो
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे॥

'हे देव! श्रेष्ठ अवयववाले (शरीरधारी) होते हुए भी ये लोक क्या बिना जन्मके ही हैं? (नहीं, कदापि नहीं;) क्या विश्वकी सृष्टि-पालन-संहार आदि क्रियाएँ बिना (अधिष्ठान) कर्ताके माने सम्भव हो सकती हैं? या ईश्वरके बिना कोई सामान्य जीव ही अधिष्ठान या कर्ता हो सकता है?

(नहीं; क्योंकि) यदि असमर्थ जीव ही कर्ता है तो चौदह भुवनोंकी सृष्टिके लिये उसके पास क्या साधन हो सकता है? (इस प्रकार आपके अस्तित्वके प्रमाण सिद्ध होनेपर भी) यतः वे (जड़बुद्धि) शंका करते हैं, अतः वे बड़े अभागी हैं'॥ ६॥

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

'ऋक्, यजुः, साम—ये वेद, सांख्यशास्त्र, योगशास्त्र, पाशुपतमत, वैष्णवमत आदि विभिन्न मत-मतान्तर हैं। इनमें (सभी लोग हमारा) यह मत उत्तम है, हमारा मत लाभप्रद है (दूसरोंका नहीं;)—इस प्रकारकी रुचियोंकी विचित्रतासे सीधे-टेढ़े नाना मार्गोंसे चलनेवाले साधकोंके

लिये एकमात्र प्राप्तव्य (गन्तव्य) आप ही हैं। जैसे सीधे-टेढ़े मार्गोंसे बहती हुई सभी नदियाँ अन्तमें समुद्रमें ही पहुँचती हैं, उसी प्रकार सभी मतानुयायी आपके ही पास पहुँचते हैं'॥ ७॥

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम्।
सुरास्तां तामृद्धिं दधति च भवद्भ्रूप्रणिहितां
न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति॥

'हे वरदानी शंकर! बूढ़ा बैल, खटियेका पावा, फरसा, चर्म, भस्म, सर्प, कपाल—बस इतनी ही आपके कुटुम्ब-पालनकी सामग्री है। फिर भी इन्द्रादि देवताओंने आपके कृपा-कटाक्षसे ही उन अपनी विलक्षण (अतुलनीय) समृद्धियों (भोगों)-को प्राप्त किया है; किंतु आपके पास भोगकी कोई वस्तु नहीं है; क्योंकि विषय-वासनारूपी मृगतृष्णा स्वरूपभूत चैतन्य

आत्मारामममें रमण करनेवालेको भ्रमित नहीं कर पाती है'॥ ८॥

ध्रुवं कश्चित् सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये।
समस्तेऽप्येतस्मिन् पुरमथन तैर्विस्मित इव
स्तुवञ्जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता॥

'हे त्रिपुरारि! कोई वादी इस सम्पूर्ण जगत्को ध्रुव (नित्य) कहता है, कोई इस सबको अध्रुव (असत् या अनित्य) बताता है और कोई तो विश्वके समस्त पदार्थोंमें कुछ नित्य और कुछ अनित्य है—ऐसा कहता है। उन सब वादोंसे आश्चर्यचकित-सा मैं उन्हीं वादों (स्तुति-प्रकारों)-से आपकी स्तुति करता हुआ लज्जित नहीं हो रहा हूँ; क्योंकि मुखरता (वाचालता) धृष्ट होती ही है' (उसे लज्जा कहाँ)॥ ९॥

तवैश्वर्यं यत्नाद् यदुपरि विरिञ्चिर्हरिरधः
परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति॥

'हे गिरिश! (अग्नि-स्तम्भके समान) आपका जो लिंगाकार तैजस रूप (ऐश्वर्य) प्रकट हुआ उसके ओर-छोर जाननेके लिये ऊपरकी ओर ब्रह्मा तथा नीचेकी ओर विष्णु बड़े प्रयत्नसे गये; पर, (वे दोनों ही) पार पानेमें असमर्थ रहे। तब उन दोनोंने श्रद्धा और भक्तिसे पूर्ण बुद्धिसे नतमस्तक हो आपकी स्तुति की। (तब उनकी स्तुतिसे प्रसन्न हो) आप उन दोनोंके समक्ष स्वयं प्रकट हो गये। हे भगवन्! श्रद्धा-भक्तिपूर्वक की गयी आपकी सेवा (स्तुति) क्या फलीभूत नहीं होती?' (अर्थात् अवश्य फलीभूत होती है)॥ १०॥

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं
दशास्यो यद् बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान्।
शिरःपद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम्॥

'हे त्रिपुरारि! दशमुख रावणने तीनों भुवनोंका निष्कण्टक राज्य बिना प्रयत्न (अनायास) प्राप्तकर जो अपनी भुजाओंकी युद्ध करनेकी खुजलाहट न मिटा सका (प्रतिभटसे युद्ध करनेकी इच्छा पूर्ण न कर सका; क्योंकि कोई प्रतिभट मिला ही नहीं), यह आपके चरणकमलोंमें अपने दस सिररूपी कमलोंकी बलि प्रदान करनेमें प्रवृत्त आपमें अविचल भक्तिका ही प्रभाव है'॥ ११॥

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं
बलात् कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः॥

'हे त्रिपुरारि! आपकी सेवासे रावणकी भुजाओंमें शक्ति प्राप्त हुई थी। अभिमानमें आकर वह अपना भुजबल आपके निवासस्थान कैलासके उठानेमें भी तौलने लगा, पर आपने जो पैरके अँगूठेकी नोकसे जरा-सा कैलासको दबा दिया तो उस रावणकी प्रतिष्ठा (स्थिति) पातालमें भी दुर्लभ हो गयी। (वह नीचे-ही-नीचे खिसकता चला गया।) प्रायः यह निश्चित है कि नीच व्यक्ति समृद्धिको पाकर मोहमें फँस जाता है' (कृतघ्न हो जाता है)॥ १२॥

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सती-
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयत्रिभुवनः।
न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
र्न कस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः॥

'हे वरदानी शंकर! त्रिभुवनको वशवर्ती बनानेवाले बाणासुरने इन्द्रकी अपार (परमोच्च)

सम्पत्तिको भी जो अपने समक्ष नीचा कर दिया, वह आपके चरणोंके शरणागत (सेवक) उस बाणासुरके विषयमें यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि आपके समक्ष सिर झुकाना (नतमस्तक होना) किसकी (किस-किस विषयकी) उन्नतिके लिये नहीं होता? अर्थात् आपके चरणोंमें सिर झुकानेसे सबकी सब प्रकारकी उन्नति होती है'॥ १३॥

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा-
विधेयस्यासीद्यस्त्रिनयनविषं संहृतवतः।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः॥

'हे त्रिनेत्र शंकर! समुद्रमन्थनसे उत्पन्न विषकी विषम ज्वालासे असमयमें ही ब्रह्माण्डके नाशके भयसे चकित देवों और दानवोंपर दयार्द्र होकर विषपान करनेवाले आपके कण्ठमें जो

कालापन (नीला धब्बा) है, वह क्या आपकी शोभा नहीं बढ़ा रहा है। (अर्थात् महोपकारके कार्यसे उत्पन्न होनेके कारण और अधिक शोभा बढ़ा रहा है।) वस्तुतः संसारके भयको दूर करनेके स्वभाववाले महापुरुषोंका विकार भी प्रशंसनीय होता है'॥ १४॥

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः।
स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्
स्मरः स्मर्तव्यात्मा नहि वशिषु पथ्यः परिभवः॥

'हे जगदीश! जिस कामदेवके बाण देव, असुर एवं नरसमूहरूप विश्वमें नित्य विजेता रहे, कहीं भी असफल होकर नहीं लौटते थे, वही कामदेव जब आपको अन्य देवताओंके समान (जेय) समझने लगा, तब आपके देखते ही वह स्मृतिमात्र शेष रह गया (भस्म हो गया)

और (सच है कि) जितेन्द्रियोंका अपमान (उन्हें विचलित करनेका उपक्रम) कल्याणकारी नहीं (अपितु घातक) होता है'॥ १५॥

मही पादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम्।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता॥

'हे ईश! जब आप ताण्डव (नर्तन) करते हैं तब आपके पैरोंके आघात (चोट)-से पृथ्वी अचानक संशय (संकट)-को प्राप्त हो जाती है; आकाशमण्डलके ग्रह-नक्षत्र-तारे आपकी घूमते हुए भुजदण्ड (-की चोट)-से पीड़ित हो जाते हैं। (अतः आकाश-मण्डल भी संकटग्रस्त हो जाता है।) स्वर्ग आपकी खुली हुई (बिखरी) जटाओंके किनारोंकी चोटसे बारम्बार दुःखद स्थितिको प्राप्त हो जाता है। यद्यपि आप जगत्‌की

रक्षाके लिये ही ताण्डव करते हैं; फिर भी आपकी प्रभुता (तो) वाम (क्षोभद) हो ही जाती है' (सच है सम्पत्तिवालेका उचित कार्य भी विक्षोभ उत्पन्न कर देता है)॥ १६॥

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते।
जगद् द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः॥

'हे जगदीश! समस्त आकाशमें फैले तारोंके सदृश फेनकी शोभावाला जो गंगाजलका प्रवाह है, वह आपके सिरपर जलबिन्दुके समान (छोटा) दिखायी पड़ा और (सिरसे नीचे गिरनेपर) उसी जलबिन्दुने समुद्ररूपी करधनी (वलय)-के भीतर संसारको द्वीपके समान बना दिया। बस, इसीसे आपका दिव्य शरीर सर्वोत्कृष्ट है—यह अनुमेय हो जाता है'॥ १७॥

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः॥

'हे परमेश्वर! त्रिपुरासुररूपी तृणको दग्ध करनेके इच्छुक आपने पृथ्वीको रथ, ब्रह्माको सारथि, सुमेरु पर्वतको धनुष, चन्द्र और सूर्यको रथके दोनों चक्के और चक्रपाणि विष्णुको (जो) बाण बनाया, (तो) यह सब आडम्बर (समारम्भ) करनेका क्या प्रयोजन था? (सर्वसमर्थ आप उसे अपने इच्छामात्रसे जला सकते थे) निश्चय ही अपने वशवर्ती (हाथमें स्थित) खिलौनोंसे खेलती हुई ईश्वरकी बुद्धि पराधीन नहीं होती' (अर्थात् वह स्वतन्त्ररूपसे अपने खिलौनोंसे खेलती रहती है)॥ १८॥

हरिस्ते साहस्त्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन् निजमुदहरन्नेत्रकमलम्।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम्॥

'हे त्रिपुरारि! भगवान् विष्णुने आपके चरणोंमें एक हजार कमल चढ़ानेका संकल्प किया था। उनमें जो एक कमल कम पड़ गया तो उन्होंने अपना ही नेत्रकमल उखाड़कर चढ़ा दिया। बस, उनकी यही भक्तिकी पराकाष्ठा सुदर्शनचक्रका स्वरूप धारण कर त्रिभुवनकी रक्षाके लिये सदा जागरूक है' (भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर श्रीविष्णुको चक्र प्रदान कर दिया था, जो विश्वका संरक्षण अनुग्रह-निग्रहद्वारा करता है)॥ १९॥

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते।

अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ॥

'हे त्रिपुरारि! (बिना फल दिये ही) यज्ञादिके समाप्त हो जानेपर यज्ञकर्ताओंका यज्ञफलसे सम्बन्ध करनेके लिये (फल दिलानेके लिये) आप तत्पर रहते हैं। कर्म तो करनेके बाद नष्ट हो जाता है (वह जड है)। अतः चेतन परमेश्वरकी आराधनाके बिना वह नष्ट कर्म फल देनेमें समर्थ नहीं होता है। अतः आपको यज्ञोंमें फल देनेमें समर्थ दाता देखकर पुण्यात्मा लोग वेदवाक्योंमें श्रद्धा-विश्वास रखकर (यज्ञ-) कर्ममें तत्पर रहते हैं'॥ २०॥

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता-
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः।
क्रतुभ्रेषस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः॥

'हे शरणदाता शंकर! कार्यमें कुशल प्रजाजनोंका स्वामी प्रजापति दक्ष यज्ञका यजमान (क्रतुपति) बना था। त्रिकालदर्शी ऋषिगण याज्ञिक (यज्ञ करानेवाले होता आदि) थे। देवगण यज्ञके सामान्य सदस्य थे। फिर भी यज्ञके फलके वितरणके व्यसनी आपसे ही यज्ञका विध्वंस हो गया। अतः यह निश्चित है कि अश्रद्धासे किये गये यज्ञ (-कर्म) कर्ताके विनाशके लिये ही सिद्ध होते हैं' (दक्षने श्रद्धा-वर्जित यज्ञ किया था)॥ २१॥

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः॥

'हे स्वामिन्! (एक बार) कामुक ब्रह्माने अपनी दुहितासे हठपूर्वक रमण करनेकी इच्छा

की। वह लज्जासे मृगी बनकर भागी; तब ब्रह्मा भी मृग बनकर उसके पीछे दौड़े। आपने भी उन्हें दण्ड देनेके लिये मृगके शिकारीके वेगके समान हाथमें धनुष लेकर बाण चला दिया। स्वर्गमें भी जानेपर ब्रह्मा आपके बाणसे भयभीत हो रहे हैं। उन्हें बाणने आज भी नहीं छोड़ा है; अर्थात् ब्रह्मा 'मृगशिरा' नक्षत्र बनकर भागे तो बाण 'आर्द्रा' नक्षत्र बनकर आज भी पीछा करता है' (ये दोनों आकाशमण्डलमें आगे-पीछे देखे जा सकते हैं)॥ २२॥

[यह पौराणिक कथा है कि एक बार ब्रह्मा अपनी दुहिता सन्ध्याको अत्यन्त रूप-लावण्यवती देखकर मोहित हो गये। उन्होंने उपगमन करना चाहा। सन्ध्या लज्जाके मारे मृगी बनकर भाग चली। ब्रह्माने मृगरूप बना लिया और पीछा किया। इस अनर्थको देखकर भगवान् भूत-

भावनने प्रजानाथको दण्डित करनेके लिये पिनाक चढ़ाकर बाण छोड़ दिया। उससे पीड़ित तथा लज्जित होकर ब्रह्मा मृगशिरा नक्षत्र हो गये। फिर रुद्रका बाण भी आर्द्रा नक्षत्र होकर उनके पीछे भागमें लग गया। वह आज भी उनके पीछे लगा हुआ दीखता है।]

स्वलावण्याशंसाधृतधनुषमह्नाय तृणवत्
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरत देहार्धघटना-
दवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः॥

'हे त्रिपुरारि! हे यमनियमपरायण! हे वरद शंकर! अपने सौन्दर्यसे शिवपर विजय प्राप्त कर लूँगा'—इस सम्भावनासे हाथमें धनुष उठाये हुए कामदेवको सामने ही तुरंत आपके द्वारा तिनकेकी भाँति भस्म होता हुआ देखकर भी यदि देवी (पार्वतीजी) अर्धनारीश्वर (आधे शरीरमें

पार्वतीको स्थान देने)–के कारण आपको स्त्री–भक्त जानती हैं तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि स्त्रियाँ (स्वभावतः) अज्ञानी होती हैं'॥ २३॥

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा–
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मङ्गलमसि॥

'हे कामरिपु! हे वरद शंकरजी! आप श्मशानोंमें क्रीड़ा करते हैं, प्रेत–पिशाचगण आपके साथी हैं, चिताकी भस्म आपका अंगराग है, आपकी माला भी मनुष्यकी खोपड़ियोंकी है। इस प्रकार यह सब आपका अमंगल स्वभाव (स्वाँग) देखनेमें भले ही अशुभ हो, फिर भी स्मरण करनेवाले भक्तोंके लिये तो आप परम मंगलमय ही हैं'॥ २४॥

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्ज्यामृतमये
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत् किल भवान्॥

'हे प्रभो! (शम-दम आदि साधनोंसे सम्पन्न) यमीलोग शास्त्रोपदिष्ट विधिसे—वायु रोककर (प्राणायाम कर) हृदयकमलमें बहिर्मुखी (संकल्प-विकल्पात्मक) मनको सभी वृत्तियोंसे शून्य करके अपने भीतर जिस किसी विलक्षण (आनन्दरूप परब्रह्म चिन्मात्र) तत्त्वका दर्शन कर रोमांचित हो जाते हैं और उनकी आँखें आनन्दके आँसुओंसे भर जाती हैं, उस समय मानो वे अमृतके समुद्रमें अवगाहन कर दिव्य आनन्दका अनुभव करते हैं; वह निर्गुण आनन्दस्वरूप ब्रह्म निश्चयरूपसे आप ही हैं'॥ २५॥

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि॥

'हे भगवन्! परिपक्व बुद्धिवाले प्रौढ़ विद्वान्—आप सूर्य हैं, आप चन्द्र हैं, आप पवन हैं, आप अग्नि हैं, आप जल हैं, आप आकाश हैं, आप पृथ्वी हैं, आत्मा हैं—इस प्रकारकी सीमित अर्थयुक्त वाणी आपके विषयमें कहते रहे हैं; पर हम तो विश्वमें ऐसा कोई तत्त्व (वस्तु) नहीं देखते (जानते) जो स्वयं साक्षात् आप न हों'॥ २६॥

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत् तीर्णविकृति।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम्॥

'हे शरण देनेवाले! ओम्—यह शब्द अपने व्यस्त (पृथक्–पृथक् अक्षरवाले) अकार, उकार, मकाररूपसे तीनों वेद (ऋक्, यजुः, साम), तीनों अवस्था (जाग्रत्–स्वप्न–सुषुप्ति), तीनों लोक (स्वर्ग–भूमि–पाताल), तीनों देवता (ब्रह्मा–विष्णु–महेश), तीनों शरीर (स्थूल–सूक्ष्म–कारण), तीनों रूप (विश्व–तैजस–प्राज्ञ) आदिके रूपमें आपका ही प्रतिपादन करता है तथा अपने अवयवोंके समष्टि (संयुक्त–समस्त)–रूप (ओम्)–से निर्विकार निष्कल तीन अवस्था एवं त्रिपुटियोंसे रहित आपके तुरीय स्वरूपकी सूक्ष्म ध्वनियोंसे ग्रहणकर प्रतिपादन करता है' (ओम् आपके स्वरूपका सर्वतः निर्वचन करता है)॥ २७॥

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सहमहां–
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम्।

अमुष्मिन् प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि
प्रियायास्मै धाम्ने प्रविहितनमस्योऽस्मि भवते ॥

'हे महादेव! आपके जो आठ अभिधान (नाम)—भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महादेव, भीम, ईशान हैं, उनमें प्रत्येकमें वेदमन्त्र भी पर्याप्त मात्रामें विचरण करते हैं और वेदानुगामी पुराण भी इन नामोंमें विचरते हैं; अर्थात् वेद-पुराण सभी उन आठों नामोंका अतिशय प्रतिपादन करते हैं। अतः परम प्रिय एवं प्रत्यक्ष समस्त जगत्के आश्रय आपको मैं साष्टांग प्रणाम करता हूँ'॥ २८॥

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति शर्वाय च नमः॥

'हे अतिनिकटवर्ती और एकान्त (निर्जन) वन-विहारके प्रेमी! आपको प्रणाम है; अति दूरवर्ती आपको प्रणाम है। हे कामारि! अति लघु (सूक्ष्मरूपधारी) आपको प्रणाम है। हे अति महान्! आपको प्रणाम है। हे त्रिनेत्र! वृद्धतम आपको नमस्कार है; अत्यन्त युवक आपको प्रणाम है। सर्वस्वरूप आपको नमस्कार है; परोक्ष, प्रत्यक्ष पदसे परे अनिर्वचनीय सबके अधिष्ठानस्वरूप आपको नमस्कार है'॥ २९॥

बहुलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः।
जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः॥

'विश्वकी सृष्टिके लिये रजोगुणकी अधिकता धारण करनेवाले ब्रह्मा-रूपधारी आपको बारम्बार नमस्कार है। विश्वके संहारके लिये

तमोगुणकी अधिकता धारण करनेवाले हर (रुद्र)-रूपधारी आपको बारम्बार नमस्कार है। समस्त जीवोंके सुख (पालन)-के लिये सत्त्वगुणकी अधिकता धारण करनेवाले विष्णु-रूपधारी आपको बारम्बार नमस्कार है। स्वयं प्रकाश मोक्षके लिये त्रिगुणातीत, समस्त द्वैतसे रहित मंगलमय अद्वैत (आप) शिवको बार-बार नमस्कार है'॥ ३०॥

कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः।
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधाद्
वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम्॥

'हे वरद शिव! (अविद्या आदि) कष्टोंके वशीभूत (अल्पशक्तियुक्त) कहाँ तो यह मेरा चित्त और कहाँ सम्पूर्ण गुणोंकी सीमाके बाहर पहुँची सदा (त्रिकाल) स्थायिनी आपकी ऋद्धि

(विभूति)। (दोनोंमें बहुत असमानता है।) इसी भयसे ग्रस्त आपके चरणोंकी भक्तिने मुझे उत्साहित कर आपके चरणोंमें मुझसे वाक्य-रूपी पुष्पोपहार, वाक्यकुसुमांजलि, वाक्यचयकी स्तुतिरूपी अंजलि समर्पित करायी है'॥ ३१॥

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥

'हे ईश! यदि काले पर्वतके समान स्याही हो, समुद्रकी दावात हो, कल्पवृक्षकी शाखाओंकी कलम बने, पृथ्वी कागज बने और इन साधनोंसे यदि सरस्वती (स्वयं) सर्वदा (जीवनपर्यन्त) आपके गुणोंको लिखें तब भी वे आपके गुणोंका पार नहीं पा सकेंगी'॥ ३२॥

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले-
ग्रंथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य।
सकलगणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार॥

'इस प्रकार शिवके सभी गणोंमें श्रेष्ठ पुष्पदन्त नामक गन्धर्वने दैत्येन्द्रों, सुरेन्द्रों एवं मुनीन्द्रोंसे पूजित, समस्त गुणोंसे परिपूर्ण होते हुए भी निर्गुण जगदीश्वर चन्द्रशेखर भगवान् शिवजीके इस सुन्दर स्तोत्रको बड़े छन्दोंमें (स्तुति-हेतु) बनाया'॥ ३३॥

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथात्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमांश्च॥

'जो व्यक्ति पवित्र अन्तःकरण (हृदय)-से परम भक्तिके साथ भगवान् शंकरके इस

प्रशंसनीय स्तोत्रका नित्य पाठ करता है, वह इस लोकमें पर्याप्त धन एवं आयुको पाता है, पुत्रवान् और यशस्वी होता है तथा (मृत्युके बाद) शिवलोकको प्राप्त कर शिवके समान (आनन्दमग्न) रहता है'॥ ३४॥

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः।
अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्॥

'महेशसे बढ़कर (उत्तम) कोई देवता नहीं है, (इस) शिवमहिम्नःस्तोत्रसे बढ़कर कोई स्तोत्र नहीं है। अघोरमन्त्र (ॐ नमः शिवाय)-से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है, गुरुसे बढ़कर कोई तत्त्व नहीं होता है'॥ ३५॥

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रियाः।
महिम्नः स्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥

'मन्त्र आदिकी दीक्षा, दान, तप, तीर्थाटन, ज्ञान तथा यज्ञादि—ये सब शिवमहिम्नःस्तोत्रकी सोलहवीं कला (अंश)-को भी नहीं पा सकते'॥ ३६॥

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शिशुशशिधरमौलेर्देवदेवस्य दासः।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्
स्तवनमिदमकार्षीद् दिव्यदिव्यं महिम्नः॥

'बालचन्द्रको सिरपर धारण करनेवाले देवाधिदेव महादेवका पुष्पदन्त नामक एक दास, जो सभी गन्धर्वोंका राजा था, इन शिवजीके कोपसे अपने ऐश्वर्यसे च्युत हो गया था। (उसके बाद) उसने इस परम दिव्य शिवमहिम्न:स्तोत्रकी रचना की' (जिससे पुनः उसने उनकी कृपा प्राप्त की)॥ ३७॥

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम्॥

'यदि मनुष्य हाथ जोड़कर एकाग्रचित्तसे देवताओं, मुनियोंके पूज्य, स्वर्ग एवं मोक्षको देने-वाले, पुष्पदन्तरचित इस अमोघ (अवश्य फल देनेवाले) स्तोत्रका पाठ करता है तो वह किन्नरोंसे स्तुति (प्रशंसा) प्राप्त करता हुआ भगवान् शिवके समीप (शिवलोकमें) पहुँच जाता है'॥ ३८॥

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्वभाषितम्।
अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम्॥

'पुष्पदन्तरचित यह सम्पूर्ण स्तोत्र (आदिसे अन्ततक) पवित्र है, अनुपम है, मनोहर है, शिव (मंगलमय) है। इसमें ईश्वर (शिव)-का वर्णन है'॥ ३९॥

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः।
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः॥

'उस पुष्पदन्तने यह शिवमयी पूजा श्रीमान् शंकरके चरणोंमें समर्पित की है। उसी प्रकार मैंने

भी (पाठरूपी पूजा) समर्पित की है। अतः इससे सदाशिव मुझपर (भी) प्रसन्न हों'॥ ४०॥

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर।
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः॥

'हे महेश्वर! मैं आपका तत्त्व (वास्तविक रूप) नहीं जानता, आप कैसे हैं—इसका ज्ञान मुझे नहीं है। आप चाहे जैसे हों, वैसे ही आपको बारम्बार प्रणाम है'॥ ४१॥

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं यः पठेन्नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते॥

'जो मनुष्य शिवमहिम्नःस्तोत्रका पाठ एक समय, दोनों समय या तीनों समय करेगा, वह समस्त पापोंसे छुटकारा पाकर शिवलोकमें पूजित होगा'॥ ४२॥

श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्बिषहरेण हरप्रियेण।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः॥

'पुष्पदन्तके मुखकमलसे निकले हुए पापहारी शिवजीके प्रिय इस स्तोत्रको कण्ठस्थ (याद) कर एकाग्रचित्त (मनोयोग)-से पाठ करनेसे समस्त प्राणियोंके स्वामी महेश बहुत प्रसन्न होते हैं'॥ ४३ ॥

॥ इति शिवमहिम्नःस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

शिवमहिम्नःस्तोत्र
पद्यानुवाद

जानत न रावरी अनंत महिमा कौ अंत
याते अनुचित जो महेस! गुन गाइबो,
हम तो अग्यानी तो मैं ग्यानी ब्रह्म आदि हू की
बानी कौ लखात चूकि मूक बनि जाइबो।
मति अनुरूप रूप गुन के निरूपन मैं
होत जो न काहू पै कलंक अंक लाइबो,
दोष आसुतोस! तौ न मानिये हमारौ आज
गुन गाइबे को यौं कमर कसि आइबो॥ १॥

पथ सौं अतीत मन बानी के महत्त्व तव
स्तुतिहू चकित नेति नेति जो बदति है,
कौन गुन गावै, है कितेक गुनवारो वह
काकी उतै अलख अगोचर लौं गति है।
भगत उधारन कौं धारन करौ जो रूप
विविध अनूप जाहि जोइ रही मति है,
काकौ मन वाकौं सदा ध्याइबो चहत नायँ
काकी गिरा नायँ गुन गाइबो चहति है॥ २॥

मधु के बरस दिव्य सरस सुधा सौं सनी
बानी वेदमय निज मुख ते बखानी है,

तव मन रंजन निरंजन! करैंगी कहा
देवगुरुहू की गुरुता सौं भरी बानी है।
प्रभु गुन गान कौ महान पुन्य पाइ आज
पावन बनैगी गिरा मेरी यह जानी है,
गुन अवगाहिबे की महिमा सराहिबे की
याही ते पुरारि जू! सुमति उर आनी है॥ ३॥
बिदित बिभूति भूतनाथ तव संसृति कौ
सृजन भरन तैसें हरन करति है,
बेद ते भनित गुन भेद ते बिभिन्न बपु,
तीनि देव—बिधि हरि हर मैं लसति है।
ताहू की महत्ता और सत्ता खंडिबे के हेतु
निंदा जगती मैं करैं केते जडमति हैं,
प्रीति होति जा मैं नाहिं पंडित प्रबीनन की
मंगल बिहीनन की होति वा मैं रति है॥ ४॥
कैसी करै ईहा, कैसी मन मैं समीहा करै,
कैसौ वाको तन, कैसौ करत जतन है,
कौन ठायँ बैठि कै बिधाता तीन लोकन कौ
कौन उपादान लैकैं सारत सृजन है।

कुतरक ऐसे रख मूरख लरत केते
मोह मैं परत ओह! जन गन मन है,
बैभव अतर्क्य नाथ! साथ सब सक्ति, कहाँ
रावरे मैं बावरे तरक कौ सरन है॥ ५॥
अमित अनूप रूप रंग अंग बारे, तऊ
एते सब लोक क्यौं रे जन्म न धरत हैं,
कै धौं या प्रपंच कौ न सिरजनहार कोऊ
बिन करतार सृष्टि कारज सरत है?
सिरजनहार जो पै ईस छाँड़ि आनि कोऊ
सोऊ कौन साधन लै सृजन करत है।
कारन कहा जो देव! बारन तिहारौ करि
बार बार संसय मैं मूरख परत हैं॥ ६॥
तीन बेद, सांख्य, जोग, सैव, वैष्नवादि मत
भिन्न भिन्न मारग अनेक कहियतु है,
योई बड़ौ, वौई बड़ौ, यासौं लाभ, वासौं लाभ
सब रुचि भेद सों सराहि चहियतु है।
केते गहैं सूधे, केते मारग असूधे गहैं
अंत सबही कौ एक आप लहियतु हैं,

सरित प्रबाह बहै सूधी कै असूधी राह
सतत अथाह सिंधु ही तौ गहियतु है॥ ७॥
रूढ़ौ बूढ़ौ बैल, पायौ खाटकौ, कुठार, चाम
भस्म, ब्याल, कर मैं कपाल छबि पावैं हैं,
बरद! तिहारे ढिग कुल के भरन हित
एतेक बरन उपकरन लखावै है।
तौहू तव भृकुटि बिलासही ते देव सबै
पास रिद्धि सिद्धि कौ सुपास सदा पावै हैं,
आतम सरूप मैं जौ मन कौ रमावै सदा,
बिषय मरीचिका न ताहि भरमावै है॥ ८॥
कोऊ कहै सारौ यह जगकौ पसारौ नित्य
कोऊ बिस्व अखिल अनित्य बतरावै है,
कोऊ या सकल जग बीच भनै दोऊ भाव
नित्य औ अनित्य या मैं पृथक लखावै है।
सुनि गुनि बात एती चित्त है चकित होत,
या ते गुन गावत न दास ये लजावै है,
बोलिबे को आदी हौं, सुभाव बकबादीपन,
सोई त्रिपुरारि! आज लाज बिसरावै हैं॥ ९॥

तेज पुंजमय तव प्रकट हुतौ जो रूप
वाकी महिमा की थाह पाइबे जतन सौं,
नीचे गयौ हरि बिधि ऊरध गमन कीन्हौं
पार नहीं पायौ, भयौ अपार श्रम तन सौं।
हारि थकि रावरे करन गुन गान लागे
स्त्रद्धा सौं गिरीस भूरि भक्ति भरे मन सौं,
खाय कैं तरस दियौ आप ही दरस आप
आवत न हाथ कहा नाथ के भजन सौं॥ १०॥
कंटक बिहीन तीन लोक कौ अखंड राज
पायौ जो अधीन बिन जतन पसारे पै,
धारीं जो सुदृढ़ दससीस ईस बीस भुजा
जुद्ध काज खाज जाकी जाय ना निवारै पै।
सोऊ लखि परत पुरारी! एक रावरेई
भारी भक्ति भावको प्रभाव निरधारे पै,
करि उपहार धर्‍यो कमल समान निज
मस्तक अमल पद कमल तिहारै पै॥ ११॥
रावरौ भजन सब काल दसभाल करि
पायौ जो बिसाल बाहु बिपिन सबल है,

रवरेई बास कयलास के उठायबे मैं
ताहि कौं लगायौ, प्रगटायौ निज बल है।
त्यौं ही आप नैसुक अँगूठा कौ हिलायौ सिरौ
नीचे लख्यौ नीच ना पतालहू में थल है।
साँची यह बात, रिद्धि सिद्धि अधिकात लखि
फूल्यौ ना समात, मोहि जात सदा खल है॥ १२॥
ऊँची सुरपति की समूची जो समृद्धि ताहि
नीची करि राखी रिद्धि सिद्धि अधिकाए ते,
परिजन सरिस प्रजा कौं तीन लोकन की
कीन्हीं जो अधीन बलिसुत बल पाए ते।
एहो बरदानी! वा मैं बात है बिचित्र कहा
रावरे चरन के भजन मन लाये ते,
बढ़त न को है, ऊँचे चढ़त न सोहै कौन
सामुहै तिहारे नाथ! माथके नवाये ते॥ १३॥
अंत ब्रह्माण्ड कौ अकाण्ड में ई ह्वै है हंत
सोचत ससंक यौं सुरासुर कौ गन है,
पेखि ह्वै अधीन करुना के तीन लोचन जू
पान करि कीन्हौं बिष संकट समन है।

याते नीलकंठ! नील कंठ जो तिहारे अंक
सोहत सदाई बनि कंठ अभरन है,
वाको है विकारहू सराहिबे के जोग जाकौ
भव भय भारन बिदारन ब्यसन है॥ १४॥
देवन दनुज मैं, मनुज हूँ मैं जग बीच
जाके पंच सायक न रंच कबौं हारै हैं,
साधे बिनु काज पग आधेहू मुरत नायँ
तुरत अधीन तीनौं लोक करि डारे हैं।
सोऊ ईस! मानि आन देव के समान तोहि
काम नाम सेस ह्वै अनंग गति धारे है,
बस करि राखै जो अतंद्र मन इंद्रिन कौं
तिन अपमान मान हितहू बिगारै है॥ १५॥
तांडव अकांड मैं धमक पाय पाँयन की
डगमग धाम ह्वै धरा कौ घसकत है,
घूमत परिघ सी भुजान के अघात लागें
गात ग्रह गन के गगन कसकत हैं।
छूटे जटाजूटन के झोकन ते बार बार
ताड़ित द्युलोक ओक हूँ ते खसकत है,

एते पै कहत जग राखिबे को नाचौ आप
सॉंचौई प्रभुत्व बाम ह्वै कै बिलसत है॥ १६॥
जाते प्रगटत पय फेन को प्रकास दिब्य
धारा मैं मिलित तारागन सौं गुनित होत,
जाते सिंधु संवृत अखंड महीमंडलहू
द्वीपरूप ह्वै कै है लखात औ भनित होत।
सोई ब्योमब्यापी बारिबृंद को प्रबाह नाथ!
माथ पै तिहारे लघु बिंदु ज्यौं लसित होत,
याही ते महेस जू! अनूप रूप रावरे की
दिब्यता महत्ता जानी जात अनुमित होत॥ १७॥
रथ बसुधा कौ, चाकौ सूर औ सुधाकर कौं
सारथि कौ पद पदमासन कौं दीन्हौं है,
आपही रथी ह्वै चाप लीन्हौ मेरु मंदर कौ
अनुज पुरंदर कौ बानरूप कीन्हौं है।
तृन से त्रिपुरकौं जराइबेके काज कैसौ
साज यों अडंबर कौ साज साथ लीन्हौं है,
खेलति बिधेयन सौं मति परमेसर की
परम स्वतंत्र है न काहूँ बस कीन्हौ है॥ १८॥

सहस सरोजन उपायन लै रोज रोज
पाँयन मैं रावरे चढ़ायो हरि नेम सौं,
ऊन लखि एक एक दिन दुख दूनौ मानि
निज नैन कंजहू निकासि धर्‍यौ प्रेम सौं।
वा ई भक्ति, भूरि फरी कर में सुदर्शन ह्वै
दीपै जो समीपै सदा श्रीपति के हेम सौं,
सोक हरिबे कौं, भरिबे कौं तीन लोकन कौं
सोई त्रिपुरारि चक्र जागै सदा छेम सौं॥ १९॥
सौवैं जग्य दान, तऊ आप जजमानन कौं
नित फल देन काज जागत रहत है,
साधन कहाँ है छोड़ पुरुष अराधन कौं
बीते कर्महू को फल जाते प्रगटत है।
देखत सबैई कल दीबे हेतु जग्यन मैं
स्वामी समरथ आप जामिन बनत हैं,
यातें धरि आस बिस्वास बेदबादन पै
कर्म करिबे मैं लोग चाव सौं लगत हैं॥ २०॥
जजमान दच्छ हैं क्रिया में अति दच्छ जहाँ
अखिल अधीस जिन्हैं जानैं प्रजाजन हैं,

एहो सरनागत कौ पालन करनहार!
ऋषिबृंद ऋत्विज, सदस्य सुरगन हैं।
हाथ सों तिहारे नाथ जग्य कौ बिनास तहाँ
जाहि जग्य फल के बिधान को व्यसन है,
साँची यह बात होति हानि जजमान ही की
जानि जो करत बिन श्रद्धा कौ जजन है॥ २१॥
बस मैं अनंग के ह्वै निज तनुजा के संग
धायो बिधि करन प्रसंग बरजोरी सौं,
ताहीं घरी लाज सौं गरी सी हरिनी ह्वै भगी
ह्वै कै प्रजानाथहू हरिन चल्यौ चोरी सौं।
पेखि यह पाप आप चाप कौं चढ़ायौ, छूटि
बेध्यौ मृग ब्याध ज्यौं सपंख सर, डोरी सौं,
नाकहूँ गए पै डरि ना कहूँ तजै है अबौं
बान सो पिनाकपानि जू कौ खरौ खोरी सौं॥२२॥*

* यहाँ उषा और सूर्यदेवके प्रात:कालिक संयोगका रुचिर रूपके द्वारा वर्णन किया गया है।

अपनी लुनाई के भरोसे गिरिजा ने लख्यौ
चाप गहें दाप सौं कुसुम धनु वारौ है,
संजम निरत सुरभंजन! भयौ सौ तहाँ
सामुहैं तिनूका सौ तुरत जरि छारौ है।
ताहू पै तिहारे तन आधे मैं निवास पाय
दास तिय कौ जो तुम्हैं करति बिचारो है,
चारौ कहा, बरद! बिचारौ एती गूढ़ बात
मूढ़ जुवतीन की जमात निरधारौ है॥ २३॥
भेष अड़बंग लै अनंग अंगहारी आप
नाचत मसान मैं पिसाच सहचारी हैं,
भासत चिता कौ लग्यौ भसम निराला तन
माला नरमुंडन के झुंडन की भारी है।
मिलित अमंगल सौं सील यौं लखायौ करै
भायौ करै विपरीत रीति त्यौं तिहारी है,
तौहू जे तिहारे पद सुमिरनहारे तिन्हैं
बरद! सहारे आप अति सुभकारी हैं॥ २४॥
अंतरमुखी कै मन, थापि चित्त चेतना मैं
सब बिधिही सौं प्रानायाम मैं निरत हैं,

जोगी अवदात जाहि देखि पुलकित गात
आनँद सलिल स्त्रोत नैन ते झरत हैं।
जाको ध्याइ भरत उमंग भूरि मानस मैं
सर मैं सुधा के मनो मज्जन करत हैं,
आप ही सो अकथ अनूप रूप बस्तु, जाहि
अंतर मैं संजमी निरन्तर धरत हैं॥ २५॥
आप ही प्रभाकर, त्यौं आकर कला के आप,
आप ही अनिल, तैसे आप ही अनल हैं,
आसमान ह्वै कै आप ही तौ भासमान होत
आतमाहू आप, आप भूमि और जल हैं,
या बिधि असीमहू कौ सीमित बतायौ करैं
मनुज प्रबीन पीन मति के सकल मैं,
हम तौ न जानैं, या अखिल जड़ चेतन मैं
ऐसौ कौन तत्त्व, जो न आप अबिकल हैं॥ २६॥
तीनहू अवस्था, तीन वेद की बिबस्था कहै
तीनहू भुवन, तीन देवन लखावै है,
बरन अकार सौं उकार सौं मकारहू सौं
रावरेई रूप के प्रकार बतरावै है।

तिन ते परे जो हीनविकृत तुरीय धाम
ताकौं अर्धमात्र सूक्ष्म ध्वनि सौं जतावै है,
एक ह्वै कै एक, त्यौं अनेक ह्वै अनेकरूप
सरनद! आप कौं प्रनवपद गावै है॥ २७॥
भव, शर्व, रुद्र, पसुपति, महादेव, उग्र,
भीम औ ईसान—ये जो आठ दिव्य नाम हैं,
एहो देव! बेद इन मैं ते एक एकहू कौं
बोलिये के हेतु बरनत आठो जाम हैं।
प्रानहू ते प्यारे मेरे परम अधार आप
आप कौ सरूप दिब्य ललित ललाम है,
याते हम भक्ति अनुरक्ति भरे अंतर मैं
आप कौं निरंतर ही करत प्रनाम हैं॥ २८॥
एहो बन बीथिन मैं बिहरन वारे! अति
निकट हमारे भगवान कौं प्रनाम है,
अति दूरवारे कौं प्रनाम मदनारे! त्योंही
लघुतर परम महान कौं प्रनाम है।
तीन नैनवारे प्रभो! अतिवय बूढ़हूँ कौं
नव वय रूढ़ त्यों जवान कौं प्रनाम है,

सब मैं तुम्ही हौ, सब रूप मैं तुम्ही हौ देव!
'यह', 'वह' सकल जहान कौं प्रनाम है॥ २९ ॥
बिस्व बिरचैबे कौ रजोगुन अधिक जाको
भव के प्रभव भवरूप को नमन है,
तम के बढ़े पै जान समय संहारहू कौ
हर ह्वै हरत, हर रूप कौं नमन है।
सुद्ध सत्व बृद्धि कौ सुजोग पाय लोगन कौं
सुख दैनवारे मृडरूप कौं नमन है,
त्रिगुन रहित हित परम प्रकासमय
पद मैं लसित सिवरूप कौं नमन है॥ ३० ॥
मेरौ यह चित्त कहाँ चेरौ है कलेसन कौ
सुध बुध कलप अलप अति पायौ है,
सीमा हीन रावरी सनातन समृद्धि कहाँ
लाँघि गुन सीमा के परेई दरसायौ है।
याते लखि चकित जकित मोहि भक्ति तव
बरद! बलात गुन गान मैं लगायौ है,
रुचि अनुसार यह बचन सुमन हार
रावरे चरन उपहार लै चढ़ायौ है॥ ३१ ॥

कारे गिरिराज तुल्य काजर कौं घोरि घोरि
स्याही करि राखै, महासिंधु मसिदानी है,
भाषा लिखिबे को साखा सुरतरु लेखनी है
कागद की कूरी त्योंही पूरी बसुधानी है।
लै कै सब साधन अराधन मैं लीन सदा
लिखति महेस गुन गन की कहानी है।
हारै थकि हाथ, गुन गाथ कौं तिहारे नाथ!
तदपि न पावै पार सारदा सयानी है॥ ३२॥

पूजत जिनहि सुर असुर मुनींद्र बृंद,
भाल जिनकेई बाल इंदु छबि पायौ है,
गुन ते रहित हितरूप वे महेस, जिन
गुन महिमा कौं इतै बरनि सुनायौ है।
खास उनकेई दास गन मैं महान एक
नामवंत ह्वै जो पुष्पदन्त कहलायौ है,
वानेई अलघु मृदु छंद बंद बारो यह
वंदन के काज अभिनंदन बनायौ है॥ ३३॥

मानस मैं भारी भूरि भक्ति अनुरक्ति भरे
नित्त जो मनुज सुद्धचित्त ह्वै रहत है,

स्तवन बिसेस या महेस महिमा कौ मंजु
रोज रोज बदन सरोज सौं कहत है।
तजि सो असिव लोक सजि सिवलोक जाय
सिव भगवान की समानता गहत है,
त्यौंही इतै संपदा अनंत, आयु दीरघ लै
सुतहू की रति औ सुकीरति लहत है॥ ३४॥

देव न दूजौ महेस्वर के सिवा,
है जो कहीं तौ समत्व न कोई;
त्यौं ही समीप महिम्न के हैं स्तुति
और की राखै महत्त्व न कोई।
मंत्र अघोर ते और बड़ो नहीं,
औरन कौ इतै सत्त्व न कोई,
श्रीगुरु ही त्यों महान जहान मैं,
है गुरु सौं बड़ौ तत्त्व न कोई॥ ३५॥

दीक्षा, दान, सुतीर्थ, तप,
जग्य आदि कृति ग्यान।
होत न महिमन पाठ की
षोडस कला समान॥ ३६॥

जिनके भाल बिसाल बाल बिधु सोभा पावत
जो देवन के देव, देव जिन्ह सीस नवावत।
तिन कौई इक दास पास रहि बिजन डुलावत
पुष्पदंत गन्धर्वराज जग बीच कहावत॥
निज प्रभु केई कोपते निज महिमा सौं जो गिर्‍यो।
वाने स्तवन महिम्न कौ दिब्य दिब्यतर यह कर्‍यो॥ ३७॥

सुर नर मुनि सब पढ़ैं, करैं याकौ आराधन
स्वर्ग और अपवर्गहु को यह एकै साधन।
पुष्पदंत कौ रचित स्तोत्र अनुपम गुनवारौ
आराधन कौ यह अचूक फल साधनहारौ॥
जोरि जुगल कर पढ़त नर यदि इकचित नित प्रात है।
किंनर गन सौं गुन सुनत सिव समीप वह जात है॥ ३८॥

स्तवन रचित गंधर्व कौ परिपूरन यह जान।
सिव बरनन मय मनहरन अनुपम सुचि कल्यान॥ ३९॥

बचन रचनमय अर्चना यह अरपित सिव पाद।
सदा सदासिव देवबर मोपर करैं प्रसाद॥ ४०॥

तत्त्व न जानौं ईस तव, कस तुम महिमा धाम।
महादेव जाबिध जहाँ ताबिध तुम्हैं प्रनाम॥ ४१॥

एक, दोय, तीनों समय पढ़त जो नर अभिराम।
सब पापन ते मुक्त सो, बसत सदा सिवधाम॥ ४२॥
पुष्पदंत मुख कंज ते प्रगट्यौ स्तोत्र उदार।
रासि रासि अघ हरत है, हर कौ परम पियार॥
कंठ किएँ याके पढ़ें, करिबे ते नित ध्यान।
होत प्रसन्न महेस बर भूतनाथ भगवान॥ ४३॥

॥ शिवमहिम्नःस्तोत्र सम्पूर्ण॥

श्रीशिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम्

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय
भस्माङ्गरागाय महेश्वराय।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय
तस्मै 'न' काराय नमः शिवाय॥
(१)

मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय
नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय।
मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय
तस्मै 'म' काराय नमः शिवाय॥
(२)

शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्द-
सूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय।
श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय
तस्मै 'शि' काराय नमः शिवाय॥
(३)

वसिष्ठकुम्भोद्भवगौतमार्य-
मुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय ।
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय
तस्मै 'व' काराय नमः शिवाय ॥
(४)

यक्षस्वरूपाय जटाधराय
पिनाकहस्ताय सनातनाय ।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय
तस्मै 'य' काराय नमः शिवाय ॥
(५)

पञ्चाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥
(६)

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं शिवपञ्चाक्षरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

द्वादशज्योतिर्लिङ्गानि

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारममलेश्वरम्॥ (१)

परल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्यां भीमशङ्करम्।
सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने॥ (२)

वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे।
हिमालये तु केदारं घुश्मेशं च शिवालये॥ (३)

एतानि ज्योतिर्लिङ्गानि सायं प्रातः पठेन्नरः।
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति॥ (४)

प्रातःस्मरणस्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि भवभीतिहरं सुरेशं
गङ्गाधरं वृषभवाहनमम्बिकेशम्।
खट्वाङ्गशूलवरदाभयहस्तमीशं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ १ ॥

प्रातर्नमामि गिरिशं गिरजार्द्धदेहं
सर्गस्थितिप्रलयकारणमादिदेवम् ।
विश्वेश्वरं विजितविश्वमनोऽभिरामं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ २ ॥

प्रातर्भजामि शिवमेकमनन्तमाद्यं
वेदान्तवेद्यमनघं पुरुषं महान्तम्।
नामादिभेदरहितं षड्भावशून्यं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ ३ ॥

प्रातः समुत्थाय शिवं विचिन्त्य
श्लोकत्रयं येऽनुदिनं पठन्ति।
ते दुःखजातं बहुजन्मसञ्चितं
हित्वा पदं यान्ति तदेव शम्भोः ॥ ४ ॥

॥ इति श्रीशिवस्य प्रातःस्मरणम् ॥

आरती

ॐ महादेव शिव शङ्कर शम्भो!
उमाकान्त हर त्रिपुरारे!
मृत्युञ्जय वृषध्वज शूलिन्!
गङ्गाधर मृड मदनारे!
हर शिव शङ्कर गौरीशम्।
वन्दे गङ्गाधरमीशम्॥
रुद्रं पशुपतिमीशानम्।
कलये काशीपुरिनाथम्॥
जय शम्भो! जय शम्भो!
शिव गौरीशङ्कर जय शम्भो!

॥ श्रीहरिः ॥

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित सहस्त्रनामस्तोत्र

1599 श्रीशिवसहस्त्रनामस्तोत्रम् (गुजराती भी)

1600 श्रीगणेशसहस्त्रनामस्तोत्रम्

1601 श्रीहनुमत्सहस्त्रनामस्तोत्रम्

1663 श्रीगायत्रीसहस्त्रनामस्तोत्रम्

1664 श्रीगोपालसहस्त्रनामस्तोत्रम्

1665 श्रीसूर्यसहस्त्रनामस्तोत्रम्

1706 श्रीविष्णुसहस्त्रनामस्तोत्रम्

1704 श्रीसीतासहस्त्रनामस्तोत्रम्

1705 श्रीरामसहस्त्रनामस्तोत्रम्

1707 श्रीलक्ष्मीसहस्त्रनामस्तोत्रम् (तेलुगु भी)

1708 श्रीराधिकासहस्त्रनामस्तोत्रम्

1709 श्रीगंगासहस्त्रनामस्तोत्रम्